प्रकाशन हेतु अनुमोदित

उच्च न्यायालय छत्तीसगढ़ बिलासपुर

युगल पीठ : : माननीय श्री एस.आर. नायक, मुख्य न्यायाधीश एवं
माननीय श्री एस.के. अग्निहोत्री, न्यायाधीश

रिट याचिका क्रमांक 1993/2005
रिट याचिका क्रमांक 1797/2005

आदेश हेतु विचारार्थ

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सही/-
मुख्य न्यायाधीश

माननीय श्री एस. के. अग्निहोत्री, न्यायाधीश

सही/-
एस. के. अग्निहोत्री,
न्यायाधीश

दिनांक 21 दिसंबर 2005 को सूचिबद्ध किया गया

सही/-
मुख्य न्यायाधीश

प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

युगल पीठ : माननीय श्री एस.आर. नायक, मुख्य न्यायाधीश

एवं माननीय श्री एस.के. अग्निहोत्री, न्यायाधीश

रिट याचिका क्रमांक 1993/2005

याचिकाकर्तागण

1. श्रीमती कुमारी बाई, पति श्री कैलाश प्रसाद महतो, उम्र लगभग 55 वर्ष
2. हरिप्रसाद महतो, पिता श्री कैलाश प्रसाद महतो, उम्र लगभग 33 वर्ष

दोनों निवासी आनंद नगर, रायपुर

बनाम

उत्तरवादीगण

1. छत्तीसगढ़ राज्य, द्वारा सचिव, विधि एवं विधायी कार्य मंत्रालय, मंत्रालय, डी.के.एस. भवन, रायपुर (छ.ग.)
2. रायपुर नगर पालिक निगम, छ.ग. नगर पालिक निगम अधिनियम के सुसंगत प्रावधानों के अंतर्गत गठित एक निगमित निकाय द्वारा आयुक्त, नगर पालिक निगम, मालवीय रोड, रायपुर

तथा

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

रिट याचिका क्रमांक 1797/2005

याचिकाकर्तागण

1. हरिप्रसाद महतो, पिता श्री कैलाश प्रसाद महतो, उम्र लगभग 33 वर्ष, निवासी आनंद नगर, रायपुर
2. मनीष कुमार भाटिया, पिता श्री जगदीश प्रसाद भाटिया, उम्र लगभग 33 वर्ष, निवासी एम.जी. रोड, रायपुर

बनाम

उत्तरवादीगण

1. छत्तीसगढ़ राज्य, द्वारा सचिव, विधि एवं विधायी कार्य मंत्रालय, मंत्रालय, डी.के.एस. भवन, रायपुर (छ.ग.)
2. रायपुर नगर निगम, छ.ग. नगर पालिक निगम अधिनियम के सुसंगत प्रावधानों के अंतर्गत गठित एक निगमित निकाय, द्वारा आयुक्त, नगर निगम, मालवीय रोड, रायपुर

उपस्थित: श्री बी.पी. शर्मा, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ।

श्री वी.वी.एस. मूर्ति, विद्वान उप. महाधिवक्ता सहित श्री सुमेश बजाज, विद्वान उप शासकीय अधिवक्ता राज्य की ओर से।

श्री एच.बी. अग्रवाल, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, सहित सुश्री संगीता मिश्रा, उत्तरवादी क्र. 2 के विद्वान अधिवक्ता ।

आदेश

(21 दिसम्बर 2005 को पारित)

न्यायालय का निम्नलिखित आदेश मुख्य न्यायाधीश एस.आर. नायक द्वारा पारित किया गया।

इन रिट याचिकाओं में छत्तीसगढ़ नगर पालिक निगम अधिनियम, 1956 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 401 की संवैधानिक वैधता पर सवाल उठाया गया है, क्योंकि यह किसी व्यथित व्यक्ति को उस धारा की

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

उप–धारा (1) के तहत आवश्यक वैधानिक सूचना की तामील किए बिना तत्काल और आवश्यक अनुतोष प्राप्त करने के लिए उचित प्रकृति का व्यवहार वाद दायर करके न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के अधिकार से वंचित करता है।

(2) इन रिट याचिकाओं को दायर करने वाले मामले के तथ्यों को प्रथम दृष्टया उल्लेख किया जाना चाहिए और वे संक्षेप में इस प्रकार हैं:

रिट याचिका क्रमांक 1797/2005 में याचिकाकर्ता एम.जी. रोड, रायपुर में स्थित एक भवन की छत के स्वामी हैं, जिसे उन्होंने दिनांक 24/05/2000 के विक्रय–पत्र के तहत अर्जित किया है। उक्त संपत्ति खरीदने के बाद याचिकाकर्ताओं ने उक्त छत पर और निर्माण कर लिया है। जब मामला इस प्रकार था, तब उन्हें दिनांक 06/09/2003 को एक सूचना दिया गया, जिसमें आरोप लगाया गया कि उनके द्वारा किया गया प्रथम तल का निर्माण वैध नहीं है और स्वीकृत योजना का उल्लंघन है, इसलिए सूचना की तिथि से तीन दिनों के भीतर इसे तोड़ दिया जाना चाहिए। याचिकाकर्ताओं को यह आशंका थी कि निगम निर्माण को तोड़ सकता है, इसलिए उन्होंने निषेधाज्ञा अनुदात्त करने के लिए एक आवेदन के साथ प्रथम व्यवहार न्यायाधीश, श्रेणी–I, रायपुर के न्यायालय में दिनांक 15/10/2004 को एक व्यवहार वाद दायर किया । समन की तामील के बाद, नगर

निगम ने दिनांक 17/03/2005 को व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के तहत यह तर्क दिया गया कि अधिनियम की धारा 401 के वैधानिक प्रावधानों का पालन न करने के कारण यह वाद कायम रखने योग्य नहीं है, क्योंकि निगम को एक महीने का वैधानिक सूचना दिए बिना वाद दायर किया गया था और इसलिए वाद खारिज किया जाना चाहिए। व्यवहार न्यायालय ने उक्त आवेदन को स्वीकार कर लिया और वाद खारिज कर दिया। उस स्तर पर, याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका दायर की।

(3) रिट याचिका क्रमांक 1993/2005 में याचिकाकर्ता मौदहापारा, जवाहर नगर वार्ड, रायपुर में स्थित 805 वर्ग फीट क्षेत्रफल वाले प्लॉट क्रमांक 2/8 के मालिक हैं, जिसे उन्होंने पंजीकृत विक्रय–पत्र (उपाबन्ध–पी/2) के तहत खरीदा है। यह कहा गया है कि नगर निगम, रायपुर से आवश्यक अनुमति प्राप्त करने के बाद उन्होंने उक्त प्लॉट में निर्माण किया है। दिनांक 14/10/2004 को नगर निगम, रायपुर के अधिकारियों ने याचिकाकर्ताओं की संपत्ति का मुआयना किया और उन्हें धमकी दी कि यदि याचिकाकर्ता स्वयं निर्माण नहीं हटाते हैं तो वे उपनियमों और स्वीकृत योजना के कथित उल्लंघन के लिए उनके निर्माण को तोड़ देंगे। याचिकाकर्ताओं को आशंका थी कि नगर निगम निर्माण को तोड़ देगा, उन्होंने निषेधाज्ञा अनुदात्त करने के लिए एक आवेदन के साथ व्यवहार न्यायालय में एक वाद दायर किया। याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम की धारा 401 के तहत आवश्यक रूप से नगर निगम को सूचना दिए बिना वाद दायर करने की अनुमति के लिए एक आवेदन भी दायर किया। नगर निगम ने समन की तामील पर उपस्थित होकर आपत्ति जताई कि याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर व्यवहार वाद अधिनियम की धारा 401 के अनिवार्य प्रावधानों का पालन न करने के कारण स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि नगर निगम को सूचना दिए बिना वाद दायर किया गया था। व्यवहार न्यायालय ने नगर निगम द्वारा दायर आवेदन को स्वीकार कर लिया और वाद खारिज कर दिया। उस स्तर पर, याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका क्रमांक 1993/2005 दायर की, जिसमें उन्हीं अनुतोष की मांग की गई, जो याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका क्रमांक 1797/1993 में मांगी थी।

(4) रिट याचिका क्रमांक 1797/2005 में मांगे गए अनुतोष इस प्रकार है:

"7.1 एक रिट और/या उत्प्रेषण रिट की प्रकृति का आदेश या कोई अन्य उपयुक्त रिट जारी करके छ.ग. नगर पालिक निगम अधिनियम, 1956 की धारा 401 को अवैध, असंवैधानिक अर्थात भारत के संविधान के विरुद्ध घोषित किया जा सकता है, जो एक नागरिक को एक माह का वैधानिक सूचना दिए बिना

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

तत्काल और अत्यावश्यक अनुतोष प्राप्त करने के लिए उपयुक्त प्रकृति का व्यवहार वाद दायर करके न्यायालय जाने के अधिकार से वंचित करता है।

7.2 एक रिट और/या उत्प्रेषण रिट की प्रकृति का एक आदेश जारी करते हुए, प्रथम व्यवहार न्यायाधीश वर्ग–।, रायपुर की न्यायालय द्वारा व्यवहार वाद क्रमांक 403–ए/2004 हरिप्रसाद महतो एवं अन्य बनाम नगर निगम, रायपुर में दिनांक 27.4.2005 को पारित किए गए आलोच्य आदेश को अभिखंडित किये गए, जिसमें अधिनियम की धारा 401 के तहत आलोच्य वाद को पेश करने से पहले विधिक तामील न किए जाने के आधार पर याचिकाकर्ताओं के वाद को समय से पहले खारिज कर दिया गया था।

7.3 प्रतिषेध रिट की प्रकृति में एक रिट और/या एक आदेश करते हुए, उत्तरवादी प्राधिकारियों, उनके अभिकर्ताओं, सेवकों और कर्मचारियों को याचिकाकर्ताओं के कब्जे में हस्तक्षेप करने या याचिकाकर्ताओं द्वारा किए गए निर्माण को ध्वस्त करने से रोका जाये ।

7.4 याचिका का व्यय भी प्रदान किया जाये।

7.5 कोई अन्य अनुतोष जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर उचित समझे।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(5) रिट याचिका क्र. 1993/2005 में भी इसी प्रकार की अनुतोष मांगी गई है।

(6) छत्तीसगढ़ राज्य और नगर निगम रायपुर दोनों ने ही रिट याचिकाओं का विरोध किया और जवाब/आपत्ति कथन दाखिल किए। छत्तीसगढ़ राज्य ने रिट याचिका क्र. 1234/2005 में आपत्ति कथन दाखिल किया जिसमें अधिनियम की धारा 401 की संवैधानिक वैधता पर भी सवाल उठाया गया था और इन रिट याचिकाओं में छत्तीसगढ़ राज्य ने आवश्यक आवेदन दाखिल किए हैं, जिसमें न्यायालय से अनुरोध किया गया है कि रिट याचिका क्र. 1234/2005 में उसके द्वारा दाखिल आपत्ति कथन को इन रिट याचिकाओं में भी आपत्ति कथन/उत्तर के रूप में स्वीकार किया जाए। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा रिट याचिका क्र. 1234/2005 पर निर्णय लेने के लिए बल नहीं दिया गया और इसे हमारे पृथक आदेश दिनांक 06/12/2005 द्वारा बल नहीं देने के कारण खारिज कर दिया गया ।

(7) हमने याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री बी.पी. शर्मा, छत्तीसगढ़ राज्य के विद्वान उप महाधिवक्ता श्री वी.वी.एस. मूर्ति और नगर निगम, रायपुर के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.बी. अग्रवाल को सुना।

(8) याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री बी.पी. शर्मा का तर्क है कि व्यवहार वाद दायर करने का अधिकार एक मूल अधिकार है और इस अधिकार को इस शर्त के आधार पर सीमित नहीं किया जा सकता है कि नगर निगम, मेयर–इन–काउंसिल या किसी अन्य अधिकारी या कर्मचारी या नगर निगम के अधीन काम करने वाले किसी व्यक्ति को निष्पादन या इच्छित निष्पादन के अनुसरण में किए गए या किए जाने का दावा किए जाने वाले किसी कार्य के संबंध में एक महीने का सूचना दिए जाने के बाद ही वाद दायर किया जाना चाहिए। श्री शर्मा, ने इसलिए, तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 401, जहां तक यह वाद दायर करने से पहले वादी पर उपरोक्त दायित्व डालती है, स्पष्ट रूप से मनमाना, अनुचित और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है और इसलिए अधिनियम की धारा 401 के उस हिस्से को असंवैधानिक घोषित किया जाना आवश्यक है। श्री बी.पी. शर्मा ने आगे तर्क दिया कि जबकि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 80 की उपधारा (2) उपधारा (1) के अनुसार आवश्यक सूचना की तामील किए बिना न्यायालय की अनुमति से वाद दायर करने का उपबंध करती है, जहां पक्षकार को सरकार और अन्य प्राधिकारियों के खिलाफ तत्काल या तुरन्त अनुतोष की आवश्यकता होती है, अधिनियम की धारा 401 में समान उपबंध शामिल नहीं किया गया है और इसलिए आक्षेपित उपबंध मनमाना और साथ ही भेदभावपूर्ण है। श्री शर्मा ने आगे तर्क दिया कि मध्य प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1961 की धारा 319 की उप–धारा (3) विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877 की धारा 54 के अंतर्गत वाद संस्थित करने के लिए विशेष उपबंध अधिनियमित करती है, जो उक्त अधिनियम की धारा 319 की उप–धारा (1) में निहित प्रतिबन्ध से ऐसा वाद संस्थित किये जाने की छूट प्रदान करती है, जो उक्त अधिनियम के अंतर्गत की गई या किए जाने का तात्पर्यित किसी बात के लिए किसी परिषद या उसके किसी पार्षद, अधिकारी या सेवक या किसी ऐसी परिषद, पार्षद, अधिकारी या सेवक के निर्देशन में कार्य करने वाले किसी व्यक्ति के विरुद्ध वाद संस्थित करने पर रोक लगाती है, जब तक कि कार्यवाही का कारण, इच्छुक वादी का नाम और निवास स्थान तथा उसके द्वारा दावा किया गया अनुतोष बताते हुए लिखित में सूचना, परिषद के मामले में उसके कार्यालय में परिदत्त या छोड़ दी गई हो, और पूर्वोक्त किसी ऐसे सदस्य, अधिकारी, सेवक या व्यक्ति के मामले में, उसे या उसके सामान्य निवास स्थान पर परिदत्त न कर दी गई

WebCopy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

हो, किन्तु अधिनियम की धारा 401 में ऐसा उपबंध अधिनियमित नहीं किया गया है। श्री शर्मा ने तर्क किया कि नगर पालिका में रहने वाले नागरिकों का एक समूह सूचना की तामील किए बिना निषेधाज्ञा के लिए वाद दायर कर सकता है, जबकि नागरिकों का दूसरा समूह सूचना की तामील किए बिना निषेधाज्ञा के लिए वाद दायर नहीं कर सकता है नगर निगम क्षेत्र में रहने वाले लोग बिना सूचना दिए व्यवहार न्यायालय में स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद नहीं दायर नहीं कर सकते। श्री शर्मा के अनुसार दो प्रावधानों के बीच अंतर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हुए एक विद्वेषपूर्ण भेदभाव के समान है। श्री शर्मा ने यूबी जस इबी रेमेडियम की कहावत पर भरोसा करते हुए तर्क दिया कि हालांकि संपत्ति का अधिकार अब मौलिक अधिकार नहीं है फिर भी यह संविधान के अनुच्छेद 300–ए के तहत प्रत्याभूत और संरक्षित एक संवैधानिक अधिकार है और इसलिए, एक नागरिक के पास राज्य और राज्य के अधिकारियों, राज्य के साधनों और अन्य अधिकारियों की गलत कार्रवाई के खिलाफ अपनी संपत्ति की रक्षा करने के लिए उचित विधिक उपचार अपनाकर व्यवहार न्यायालय के समक्ष जा सकता है और विधिक उपाय मांगने के उस अधिकार पर कोई सीमा यह निर्धारित करके वैध रूप से नहीं लगाई जा सकती है कि निगम को लिखित में सूचना दिए जाने के एक महीने बाद तक निगम के खिलाफ कोई वाद नहीं चलाया जाएगा और चूंकि वह निर्देश संविधान के अनुच्छेद 300–ए के तहत नागरिकों के अधिकारों का उल्लंघन करता है, इसलिए आक्षेपित उपबंध को असंवैधानिक करार दिया जाना चाहिए। श्री शर्मा ने अपने तर्क के समर्थन में श्रीमती गंगा बाई बनाम विजय कुमार एवं अन्य[1], सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन, तमिलनाडु बनाम भारत संघ[2]; मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य[3]; तथा महेश चंद्र बनाम क्षेत्रीय प्रबंधक, उत्तर प्रदेश वित्तीय निगम एवं अन्य[4] में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का उल्लेख किया।

(9) श्री वी.वी.एस. मूर्ति , विद्वान उप महाधिवक्ता, का तर्क है कि चूंकि नगर निगम अधिनियम बनाने की शक्ति विधायिका के पास है निगम अधिनियम विवादित नहीं है, केवल यह देखा जाना है कि क्या आक्षेपित उपबंध को लागू करने में विधायिका ने संविधान के भाग–III के किसी उपबंध या संविधान के अन्य प्रावधानों का उल्लंघन किया है। श्री मूर्ति का तर्क है कि सिर्फ इसलिए कि कोई व्यक्ति अधिनियम की धारा 401 के

[1] (1974) 2 एससीसी 393.
[2] एआईआर 2005 एससी 3353.
[3] (2004) 4 एससीसी 311
[4] (1993) 2 एससीसी 279

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

तहत निर्धारित अधिकारियों को सूचना दिए बिना वाद दायर नहीं कर सकता है, यह नहीं कहा जा सकता है कि वर्तमान स्थिति में पक्षकारों के पास कोई विधिक उपाय नहीं बचा है। श्री मूर्ति द्वारा तर्क प्रस्तुत किया गया कि वर्तमान स्थिति में जहां कोई पक्ष अपनी संपत्ति या व्यक्ति की रक्षा के लिए वर्तमान अंतरिम आदेश चाहता है, वह अनुतोष के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है क्योंकि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति हमेशा पीड़ित व्यक्तियों के लिए उपलब्ध है और उचित मामलों में उच्च न्यायालय वैकल्पिक वैधानिक उपायों को समाप्त किए बिना भी दायर रिट याचिका को ग्रहण कर सकता है। श्री मूर्ति ने यह भी तर्क दिया कि केवल इसलिए कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 80 की उपधारा (2) के संशोधित प्रावधानों में, व्यवहार न्यायालय को उत्तरवादी अधिकारियों को वैधानिक सूचना दिए बिना वाद दायर करने की अनुमति देने और तत्काल उचित अंतरिम आदेश देने का अधिकार है, यह नहीं कहा जा सकता है कि विधानमंडल को अधिनियम की धारा 401 में भी इसी तरह का उपबंध शामिल करना चाहिए था। श्री वी.वी.एस. मूर्ति ने वैकल्पिक रूप से यह तर्क दिया कि एक इच्छुक वादी के पास सूचना जारी करके और व्य.प्र.सं. की धारा 151 के तहत व्यवहार न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का आह्वान करके अस्थायी निषेधाज्ञा या अस्थायी स्थगन जैसे अस्थायी आदेशों की मांग करते हुए एक आवेदन दायर करके दावा पेश करने का उपाय है, जिसमें सूचना की वैधानिक अवधि की समाप्ति पर वाद के रूप में पंजीकृत होने वाले इच्छित वाद की एक प्रति संलग्न है। उप महाधिवक्ता का यह तर्क मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की युगल पीठ के मामले में दिए गए निर्णय पर आधारित है। राम कृष्ण पाराशर बनाम चिरौंजी लाल वैश्य और अन्य[5]। यह भी तर्क दिया गया कि केवल इसलिए कि नगरपालिका अधिनियम की धारा 319 की उपधारा (3) में उपधारा (1) में निहित प्रतिबंध से वाद संस्थितः किये जाने से छूट देने के उपबंध लागू किए गए हैं, यह नहीं कहा जा सकता कि अधिनियम की धारा 401 में भी इसी तरह के उपबंध लागू किए जाने चाहिए थे। श्री मूर्ति का तर्क है कि एक सक्षम विधानमंडल द्वारा बनाए गए विधि की संवैधानिक वैधता पर केवल दो आधारों पर ही चुनौती दिया जा सकता है, जो कि उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने राज्य ए.पी. राज्य और अन्य बनाम मैकडॉवेल एंड कंपनी और अन्य[6] के मामले में बताए हैं, किसी अन्य आधार पर नहीं और यह निर्णय आज भी लागू है।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

---

[5] 1977 जेएलजे 184

[6] (1996) 3 एससीसी 709

(10) रायपुर नगर निगम की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.बी. अग्रवाल, ने श्री मूर्ति के तर्कों का समर्थन किया।

(11) पक्षकारो के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात, हमारे निर्णय के लिए एकमात्र प्रश्न यह उठता है कि क्या याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम की धारा 401 के आक्षेपित प्रावधानों को अविधिमान्य करने के लिए कोई संवैधानिक सीमा या दोष दर्शाई गयी है।

(12) भारतीय संविधान ने विधायी शक्तियों को केंद्र और राज्यों के बीच वितरित किया है। भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची की तीन सूचियाँ यह काम करती हैं। सूची–I. (संघ सूची) में उन विषयों को सूचीबद्ध किया गया है जिनके संबंध में संसद को विधि बनाने का विशेष अधिकार है; सूची–II. (राज्य सूची) में राज्य विधानमंडलों के लिए आरक्षित विधायी क्षेत्र शामिल हैं और सूची–III. (समवर्ती सूची) में वे विषय हैं जिन पर संसद और राज्य विधानमंडल दोनों विधि बना सकते हैं (संसद द्वारा पारित विधि पर अधिभावी प्रभाव के साथ)। कंडिका (2) भारत के संविधान के अनुच्छेद 13 में यह अनिवार्य किया गया है कि राज्य ऐसा कोई विधि नहीं बनाएगा जो संविधान के भाग–III. द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनता हो या कम करता हो और उस कंडिका के उल्लंघन में बनाया गया कोई भी विधि उल्लंघन की सीमा तक शून्य होगा। इसलिए, संवैधानिक न्यायालय का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए गए विधि को असंवैधानिक घोषित करे जब उन्होंने ऐसा विधि बनाने का संकल्प लिया हो जो या तो इसे बनाने के लिए संवैधानिक शक्ति के अभाव में, या क्योंकि संवैधानिक रूपों या शर्तों का पालन नहीं किया गया है, या जहां विधि संविधान के भाग–III. या किसी अन्य मूल संवैधानिक प्रावधानों में निहित और प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(13) यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि, शुरुआत में, उपधारणा सदैव किसी अधिनियम की संवैधानिकता के पक्ष में होता है और उसे चुनौती देने वाले व्यक्ति पर यह भार होता है कि वह यह दिखाए कि संवैधानिक सिद्धांतों और सीमाओं का स्पष्ट उल्लंघन हुआ है, चाहे वह विधि संविधान से पहले की हो या संविधान के पश्चात की। चिरंजीत लाल बनाम भारत संघ[7] और मधु लिमये बनाम उप–विभागीय दंडाधिकारी[8]में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों द्वारा यह स्थिति अच्छी तरह से स्थापित की गई है। सीएफ राव बहादुर बनाम

[7] (1950) एससीआर 869
[8] एआईआर 1971 एससी 2486

उत्तर प्रदेश राज्य[9] के मामले मे, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि संवैधानिक अमान्यता के लिए आवश्यक सभी तथ्य प्रदान करने का भार उस व्यक्ति पर है जो इसे चुनौती देता है। हालांकि, यह कहना नहीं है कि आक्षेपित विधि की वैधता पर विचार करने में उपधारणा के कारण , न्यायालय को केवल अभिवचनों पर ही विचार किया जाना चाहिए। न्यायालय स्वयं इस बात पर संतोष करने के लिए स्वतंत्र होगा कि संविधान के किसी उपबंधों के तहत आक्षेपित विधि को उन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कायम रखा जा सकता है जिनमें ऐसा विधि बनाया गया था, जैसा कि बुरारकर कोल कंपनी बनाम भारत संघ[10] और हमदर्द दवाखाना बनाम भारत संघ[11] में सर्वोच्च न्यायालय अभिनिर्धारित किया है। इसी कारण से न्यायालय को, यदि संभव हो तो आक्षेपित विधि का ऐसा प्रगतिशील और/या संकीर्ण अर्थ निकालना चाहिए जो उसकी संवैधानिक वैधता को कायम रखे, जैसा कि सुनील बनाम दिल्ली प्रशासन[12] में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिमत दिया है। नरेश बनाम महाराष्ट्र राज्य[13] में सर्वोच्च न्यायालय ने राय दी है कि न्यायालय को कार्यवाही में सीधे तौर पर शामिल न होने वाले बिंदुओं पर आधारों को शामिल नहीं करना चाहिए या टिप्पणियां नहीं करनी चाहिए, जिसका अर्थ यह है कि जब तक पक्षकारो की अभिवचनों से विचार और निर्णय के लिए कोई बिंदु नहीं उठता, न्यायालय ऐसे बिंदु पर अपनी राय व्यक्त नहीं करेगा। डायमंड शुगर मिल्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[14], नवीनचंद्र बनाम आयकर आयुक्त[15] और पीरलेस बनाम आर.बी.आई.[16] में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों से यह अच्छी तरह स्थापित हो चुका है कि जब किसी अधिनियम की शक्तियों को चुनौती दी जाती है, और विधायिका की शक्ति की सीमाओं को सुनिश्चित करने में कोई कठिनाई होती है, तो कठिनाई को, जहां तक संभव हो, विधायी निकाय के पक्ष में हल किया जाना चाहिए, सुसंगत विधायी प्रविष्टि पर सबसे उदार अर्थान्वयन करते हुए ताकि इसका व्यापक आयाम हो सके, और विधान के सार को देखा जाना चाहिए।

(14) भारत में, किसी भी विधि को वैध होने के लिए संविधान में निहित संवैधानिक सीमाओं की आवश्यकताओं को पूरा करना होगा। इसकी पहली आवश्यकता

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

[9] (1953) एससीआर 1188
[10] एआईआर 1961 एससी 954
[11] 1960 (2) एससीआर 671
[12] एआईआर 1978 एससी 1675
[13] एआईआर 1967 एससी 1
[14] एआईआर 1962 एससी 652
[15] 1955 (1) एससीआर 829
[16] एआईआर 1992 एससी 1033

यह है कि इसे सक्षम विधानमंडल द्वारा पारित किया जाना चाहिए, अर्थात्, विधि का विषय भारत संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण के अनुसार उस विधानमंडल का होना चाहिए। दूसरे, विधि को भारत के संविधान के भाग–III या किसी अन्य मूल संवैधानिक प्रावधानों में प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। ए.पी. राज्य बनाम मैक. डॉवेल एंड कंपनी (सुप्रा) में, उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि उपरोक्त दो आधारों को छोड़कर, ऐसा कोई तीसरा आधार नहीं है जिसके आधार पर सक्षम विधानमंडल द्वारा बनाया गया विधि अवैध ठहराया जा सके और अवैध ठहराने का आधार आवश्यक रूप से उपरोक्त दो आधारों के तक ही सीमित रहना चाहिए अनिवार्य रूप से, संवैधानिकता का प्रश्न हमेशा शक्ति का प्रश्न होता है हालांकि, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता शर्मा ने तर्क दिया कि आंध्र प्रदेश राज्य बनाम मैकडॉवेल एंड कंपनी (सुप्रा) के मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय की सत्यता पर बाद में सुब्रमण्यम स्वामी बनाम निदेशक, सीबीआई और अन्य[17] के मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ ने संदेह जताया था और इसलिए मैकडॉवेल एंड कंपनी (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला अब अच्छा विधि नहीं है। हमने सुब्रमण्यम स्वामी बनाम निदेशक, सीबीआई और अन्य (पूर्वोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान से पढ़ा है और हमें यह कहना चाहिए कि श्री बी.पी. शर्मा का निवेदन/ तर्क सही नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने कंडिका 4, 5 और 7 में पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा की गई अभिवचनों और प्रतिअभिवचनों को ध्यान में रखते हुए उन अभिवचनों पर कोई राय व्यक्त किए बिना मामले को बड़ी पीठ को सौंप दिया है। उक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा की गई किसी भी टिप्पणी से यह संकेत नहीं मिलता कि माननीय न्यायाधीश मैकडॉवेल एंड कंपनी (पूर्वोक्त) के मामले में प्रकरण विधि से असहमत हैं।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(15) मैकडॉवेल एंड कंपनी (सुप्रा) के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के कंडिका 43 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

> " संसद या विधानमंडल द्वारा बनाए गए विधि को न्यायालय द्वारा दो आधारों पर और केवल दो आधारों पर निरस्त किया जा सकता है, अर्थात, (1) विधायी क्षमता की कमी और (2) संविधान के भाग III या किसी अन्य संवैधानिक उपबंध में प्रत्याभूत किसी भी मौलिक अधिकार का उल्लंघन। कोई तीसरा आधार नहीं है। हम संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों से प्रेरित प्रक्रियात्मक अयुक्तियुक्त और मूल

[17] (2005) एससीसी 317

अयुक्तियुक्तता की अवधारणाओं की चर्चा में प्रवेश नहीं करना चाहते हैं। यहां तक कि यू.एस.ए. में भी, ये अवधारणाएं और विशेष रूप से मूल उचित प्रक्रिया की अवधारणा अंतहीन विवाद का विषय साबित हुई हैं, नवीनतम सोच इस आधार (मूल विधि के सम्यक) के गंभीर कटौती की ओर अग्रसर है। मूल विधि के सम्यक के आधार के खिलाफ मुख्य आलोचना यह है कि यह न्यायालयों को विधि के विशेष भाग को अधिनियमित करने में विधायिका की बुद्धिमत्ता के मध्यस्थ के रूप में स्थापित करना चाहता है। हमारे लिए यह कहना पर्याप्त है कि इसे जिस भी नाम से जाना जाता है, अमान्यता का आधार अवश्य होना चाहिए। ऊपर बताए गए दो आधारों के दायरे में आते हैं। दूसरे शब्दों में, मान लीजिए, यदि किसी अधिनियम को अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने के रूप में चुनौती दी जाती है, तो इसे केवल तभी रद्द किया जा सकता है जब यह पाया जाता है कि यह समानता खंड/समान संरक्षण का उल्लंघन करता है इसी तरह, यदि किसी अधिनियम को अनुच्छेद 19 (1) के कंडिका (ए) से (जी) द्वारा प्रत्याभूत किसी भी मौलिक अधिकार का उल्लंघन करने के रूप में चुनौती दी जाती है, तो इसे केवल तभी रद्द किया जा सकता है जब यह पाया जाता है कि यह अनुच्छेद 19 के कंडिका (2) से (6) आदि में से किसी के द्वारा सुरक्षित नहीं है। किसी भी अधिनियम को केवल यह कहकर रद्द नहीं किया जा सकता है कि यह मनमाना** या अनुचित है। किसी अधिनियम को अमान्य करने से पहले कुछ या अन्य संवैधानिक कमज़ोरी का पता लगाना होगा। किसी अधिनियम को इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता कि न्यायालय इसे अनुचित मानती है।"

(बल दिया गया)

(16) विधानमंडल और न्यायपालिका संवैधानिक योजना के तहत समान गरिमा और स्थिति वाले राज्य के समन्वय अंग हैं। संवैधानिक न्यायालयों के लिए कुछ प्रकरण में विधायी अधिनियमों को असंवैधानिक और शून्य घोषित करना जायज़ है, लेकिन, इसलिए नहीं कि न्यायिक शक्ति विधायी शक्ति से डिग्री या गरिमा में श्रेष्ठ है। न्यायालय विधि को अमान्य या असंवैधानिक घोषित करते समय केवल विधायी इच्छा और संविधान द्वारा विधि बनाने वाले निकायों पर लगाई गई सीमाओं को लागू कर रहा है। कोई भी न्यायालय किसी क़ानून को केवल अन्यायपूर्ण और कठोर प्रावधानों के आधार पर असंवैधानिक और शून्य घोषित नहीं कर सकता है, या इसलिए कि यह नागरिक के कुछ प्राकृतिक, सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक अधिकारों का उल्लंघन करने वाला माना

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

जाता है, जब तक कि यह नहीं दिखाया जा सकता है कि ऐसा अन्याय वास्तव में निषिद्ध है या ऐसे अधिकारों की गारंटी या संविधान द्वारा सुरक्षा की गई है। सख्ती से कहा जाए तो, न्यायालय राज्य के लोगों के सभी प्रकार के अधिकारों के संरक्षक नहीं हैं, जब तक कि वे अधिकार किसी संवैधानिक उपबंध द्वारा सुरक्षित और संरक्षित न हों जो न्यायिक संज्ञान में आते हैं।

(17) **'थॉमस एम. कूली द्वारा लिखित संवैधानिक सीमाओं पर एक पुस्तक '** में कहा गया है कि न्यायालय विधि बनाने के मामले में सही, तर्क और समीचीनता के मुद्दों पर राय की दौड़ नहीं लगा सकता है। शक्ति, और यह कि कोई भी विधायी कार्य जो राज्य के अन्य अंगों की आवंटित शक्ति का अतिक्रमण नहीं करता है, प्रथम दृष्टया वैध होने के कारण, लागू किया जाना चाहिए, जब तक कि विधायी शक्ति पर प्रतिबंध संविधान में ही इंगित नहीं किए जा सकते हैं, और मामला उनके अंतर्गत आता है। उसी पुस्तक में, यह भी कहा गया है कि न्यायालयों को उनके स्पष्ट अन्याय और अनैतिकता के कारण विधियों को शून्य घोषित करने की स्वतंत्रता नहीं है, न ही वे ऐसा इसलिए कर सकते हैं क्योंकि न्यायाधीशों के मन में वे गणतंत्र सरकार के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते प्रतीत होते हैं, जब तक कि यह न हो कि वे अधिकार संविधान द्वारा विधायी अतिक्रमण से परे रखे गए हों और न ही न्यायालयों को किसी अधिनियम को असंवैधानिक घोषित करने की स्वतंत्रता है, क्योंकि, उनकी राय में, यह संविधान में व्याप्त होने वाली भावना के विपरीत है, लेकिन शब्दों में व्यक्त नहीं किया गया है या संदर्भ से पहचाना नहीं जा सकता है। न्यायिक हस्तक्षेप द्वारा विधानमंडलों की विधायी शक्ति को सीमित करना अनुमेय नहीं है, सिवाय इसके कि व्यक्त शब्दों में एक लिखित संविधान न्यायालय को वह अधिकार देता है। इसके अलावा, उसी पुस्तक में, यह सटीक रूप से कहा गया है कि राज्य की विधि बनाने की शक्ति किसी भी प्रतिबंध को मान्यता नहीं देती है, और संविधान द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों को छोड़कर किसी से बंधी नहीं है, जो कि सिल बनाम विलेज ऑफ कॉर्निंग, 15 एन वाई 303 में दी गई राय पर अवलंब लिया है ।

(18) किसी वैधानिक विधि की संवैधानिक वैधता की पुनर्विलोकन को नियंत्रित करने वाले उपरोक्त सिद्धांतों के आधार पर, आइए हम अपने सामने उठाए गए विवादों की जांच करें। अधिनियम की धारा 401 की उपधारा (1) इस प्रकार है: –

"401. निगम आदि के विरुद्ध वाद में सूचना, परिसीमा और संशोधन की निविदा:– (1) निगम, महापौर–परिषद या किसी निगम अधिकारी या कर्मचारी या

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई वाद संस्थित नहीं किया जाएगा, जो निगम के विरुद्ध किसी अन्य विधिक दायित्व के अधीन कार्य करता हो। निगम, महापौर–सभा या किसी नगरपालिका अधिकारी या सेवक के निर्देशन में कार्य करते हुए, इस अधिनियम के अनुसरण या निष्पादन या निष्पादन के आशय में किए गए या किए जाने हेतु तात्पर्यित किसी कार्य के संबंध में, या इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम या उपविधि के निष्पादन में किसी कथित उपेक्षा या चूक के संबंध में, मुख्य निगम कार्यालय या ऐसे अधिकारी, सेवक या व्यक्ति के निवास पर पर्याप्त ब्यौरे सहित लिखित सूचना दिए जाने या छोड़े जाने के पश्चात् अगले एक माह की समाप्ति तक, –

(क) वाद हेतुक;

(ख) वाद के प्रयोजन के लिए इच्छुक वादी तथा उसके अधिवक्ता, प्लीडर या अभिकर्ता, यदि कोई हो, का नाम और निवास; तथा

(ग) वह अनुतोष जिसका वह दावा करता है।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

अधिनियम की उप–धारा (1) के उपबंध , 01/02/1977 से प्रभावी, 1976 के अधिनियम क्रमांक 104 द्वारा इसके संशोधन से पहले व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 80 की उप–धारा (1) के प्रावधानों के समान हैं। 1976 के संशोधन अधिनियम क्र. 104 द्वारा इसके संशोधन से पहले और बाद में धारा 80 व्यप्रसं की उप–धारा (1) के तहत आवश्यक सूचना के उद्देश्यों को उजागर करने वाले बहुत सारे मामले हैं। जैसा कि रघुनाथ दास बनाम भारत संघ[18], पंजाब राज्य बनाम गीता आयरन एंड ब्रास वर्क्स[19] में उच्चतम न्यायालय ने और सेलम एडवोकेट बार एसोसिएशन, तमिलनाडु बनाम भारत संघ (सुप्रा)[2] में हाल के निर्णय में कहा है, संशोधन से पहले और बाद में धारा 80 व्यप्रसं की उप–धारा (1) के तहत आवश्यक सूचना का उद्देश्य सरकार या संबंधित सार्वजनिक अधिकारी को विधि की स्थिति पर पुनर्विचार करने और निर्णय लेने का अवसर देना है और यदि सलाह दी जाए तो दावे को बिना किसी मुकदमेबाज़ी के संशोधित या निपटाया जा सकता है। विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णय भी इसी प्रकार के हैं, उदाहरण के लिए, पटना उच्च न्यायालय ने बिहार प्रांत बनाम कामाक्ष्य नारायण सिंह[20] में; मद्रास उच्च

[18] एआईआर 1969 एससी 674
[19] एआईआर 1978 एससी 1608
[20] एआईआर 1950 पट. 366;

न्यायालय ने राज्य सचिव बनाम पेरुमल[21] में; कलकत्ता उच्च न्यायालय ने शाहबजादी बनाम फर्ग्यूसन[22], मनिंद्र बनाम राज्य सचिव[23] भुवन मोहिनी बनाम बिराज[24] में; बॉम्बे उच्च न्यायालय ने राज्य सचिव बनाम गुलाम रसूल[25], काशीनाथ बनाम नवाब आलम[26], इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश सरकार बनाम नन्हूमल[27] में। नागपुर उच्च न्यायालय ने राज्य सचिव बनाम नागराव[28] में। व्यप्रसं की धारा 80 की उपधारा (1) के अंतर्गत आवश्यक सूचना के उद्देश्य के संबंध में न्यायालयों द्वारा जो निर्णय दिया गया है, वह अधिनियम की धारा 401 की उपधारा (1) के अंतर्गत आवश्यक सूचना के उद्देश्य से निपटने में भी समान रूप से लागू होता है। धारा 80 व्यप्रसं की उपधारा (1) के अपरिवर्तित उपबंध और अधिनियम की धारा 401 की उपधारा (1) के उपबंध अपनी विषय–वस्तु में काफी हद तक समान हैं। जब सार्वजनिक प्राधिकरणों को एक वैधानिक सूचना जारी किया जाता है, तो यह अपेक्षा की जाती है कि वे सूचना को पूरी गंभीरता से लें और इसे दबाए न रखें और नागरिकों को मुकदमेबाज़ी के झंझट में न डालें। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे दावेदार (जिसने सूचना दिया है) को वैधानिक अवधि के भीतर या किसी भी मामले में वादी द्वारा वाद शुरू करने से पहले बता दें कि वे क्या रुख अपनाते हैं। अधिनियम की धारा 401 की उपधारा (1) के तहत सूचना देने का पूरा उद्देश्य निगम और उसके अधिकारियों को प्रस्तावित मामले की पर्याप्त चेतावनी देना है, ताकि निगम और उसके अधिकारियों को मामले की सुनवाई के लिए पर्याप्त समय मिल सके। निगम और उसके प्राधिकारी (यदि वे चाहें तो) बिना किसी सुनवाई के दावे का निपटारा कर सकते हैं या न्यायालय का सहारा लिए बिना क्षतिपूर्ति दे सकते हैं। ध्यान देने की जरूरत है कि अधिनियम की धारा 401 की उपधारा (1) को सार्वजनिक नीति के एक उपाय के रूप में अधिनियमित किया गया है जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि निगम और उसके प्राधिकारियों के खिलाफ वाद शुरू करने से पहले निगम या उसके प्राधिकारियों या संबंधित अधिकारी को दावे की जांच करने का अवसर दिया जाए और यदि दावा उचित पाया जाए तो तत्काल कार्रवाई की जाए और इस तरह अनावश्यक मुकदमा से बचा जाए और सूचना जारी करने वाले व्यक्ति को वाद शुरू करने के लिए मजबूर किए बिना दावे का

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

[21] (1901) 24 मद. 279
[22] (1881) 7 कल. 499
[23] (1970) 5 कल एलजे 148
[24] (1961) 40 बॉम 392
[25] एआईआर 1940 कल.1
[26] एआईआर 1935 बॉम. 229
[27] एआईआर 1960 ईला. 420
[28] एआईआर 1038 नाग.415

निपटारा करके जनता का समय और पैसा बचाया जाए जिसमें काफी खर्च और देरी शामिल है। अधिनियम की धारा 401 की उपधारा (1) के प्रावधानों में अंतर्निहित सार्वजनिक उद्देश्य न्याय को बढ़ावा देना और अनावश्यक और परिहार्य मुकदमेबाज़ी से बचकर सार्वजनिक हित को सुरक्षित करना है ।

(19) सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन, तमिलनाडु बनाम भारत संघ (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 80 व्यप्रसं की उपधारा (1) के तहत आवश्यक सूचना के उद्देश्य पर विचार करते हुए इस प्रकार टिप्पणी की है:

> "40. संहिता की धारा 80(1) के अनुसार वाद दायर करने की शर्त के रूप में सरकार को दो महीने का पूर्व सूचना दिया जाना आवश्यक है, सिवाय तब जब अंतरिम आदेश की तत्काल आवश्यकता हो, जिस स्थिति में न्यायालय पूर्व सूचना के कठोर नियम पर बल नहीं दे सकता। दो महीने की अवधि इसलिए प्रदान की गई है ताकि सरकार सूचना में दिए गए दावे की जांच कर सके और उसके पास उपयुक्त उत्तर भेजने के लिए पर्याप्त समय हो। अंतर्निहित उद्देश्य मुकदमेबाज़ी को कम करना है। उद्देश्य विवाद और विवाद के क्षेत्र को भी कम करना है। इसी प्रकार विभिन्न अन्य विधानों में भी उपबंध मौजूद हैं। जहां कहीं भी वैधानिक उपबंध के तहत सूचना की तामील वाद दायर करने की एक पूर्व शर्त और निर्धारित अवधि है, इसलिए सरकारों या विभागों या अन्य वैधानिक निकायों के लिए न केवल ऐसे सूचना का उत्तर भेजना आवश्यक है, बल्कि सूचना में उठाए गए सभी महत्वपूर्ण बिंदुओं और विवाद्यकों से उचित रूप से निपटना भी आवश्यक है। देश की विभिन्न अदालतों में लंबित बड़ी संख्या में मुकदमों में सरकारें, सरकारी विभाग या वैधानिक प्राधिकरण उत्तरवादी हैं। न्यायिक सूचना इस तथ्य से लिया जा सकता है कि बड़ी संख्या में मामलों में या तो सूचना का उत्तर नहीं दिया जाता है या कुछ मामलों में जहां उत्तर भेजा जाता है, वह आम तौर पर अस्पष्ट और टालमटोल वाला होता है। इसका परिणाम यह होता है कि संहिता की धारा 80 और इसी तरह के प्रावधानों में अंतर्निहित उद्देश्य विफल हो जाता है। इससे न केवल टाले जा सकने वाले मुकदमा को बढ़ावा मिलता है, बल्कि राजकोष पर भी भारी खर्च और व्यय आती है यदि उचित उत्तर भेजा जाता है तो या तो सूचना में दावा स्वीकार किया जा सकता है या विवाद के क्षेत्र को कम किया जा सकता है या नागरिक राज्य के रुख को जानकर संतुष्ट हो सकता है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

धारा 80 की भावना और उद्देश्य का उल्लंघन करने में सरकार, केंद्र या राज्य या वैधानिक अधिकारियों की कोई जवाबदेही नहीं है।

41. ये उपबंध सभी संबंधित सरकारों और राज्यों तथा वैधानिक प्राधिकरणों पर ऐसे नोटिसों का उचित जवाब भेजने का निहित कर्तव्य डालते हैं। मौजूदा स्थिति को देखते हुए, हम सभी संबंधितों को निर्देश देते हैं सरकार, केंद्र या राज्य या अन्य प्राधिकरण, जब भी किसी विधि में किसी के खिलाफ वाद दायर करने या अन्य कार्यवाही के लिए पुरोभावय शर्त के रूप में सूचना की तामील की आवश्यकता होती है, तो उसे तीन महीने की अवधि के भीतर एक अधिकारी को नियुक्त करना होगा, जिसे यह सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार बनाया जाएगा कि धारा 80 या इसी तरह के प्रावधानों के तहत सूचना के जवाब किसी विशेष विधि में निर्धारित अवधि के भीतर भेजे जाएं। जवाब पूरी तरह से सोच–समझकर भेजे जाएंगे। इस तरह नामित किये जाने के बावजूद, अगर न्यायालय यह पाती है कि या तो सूचना का जवाब नहीं दिया गया है या जवाब टालमटोल करने वाला और अस्पष्ट है और बिना सोच–समझे भेजा गया है, तो न्यायालय आमतौर पर सरकार के खिलाफ भारी जुर्माना लगाएगी और उसे संबंधित अधिकारी के विरूद्ध उचित कार्रवाई करने का निर्देश देगी, जिसमें उससे लागत वसूलना भी शामिल है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(20) अधिनियम की धारा 401 की उपधारा (1) की भाषा अभिव्यक्त रूप से, सुस्पष्ट और अनिवार्य है और इसमें कोई विवक्षा या अपवाद नहीं है, इसलिए, इसे लागू करना न्यायालय का स्पष्ट कर्तव्य है और कठिनाई के विचार विधायिका के आदेश को ईमानदारी से लागू न करने का वैध आधार नहीं होंगे। ऐसा कहते हुए, हम बिहारी चौधरी बनाम बिहार राज्य[29] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से पुष्ट होते हैं, जो धारा 80 व्यप्रसं की उपधारा (1) के प्रावधानों के आदेश से संबंधित है।

(21) इस समय यह ध्यान देना उचित है कि एक समय उच्च न्यायालयों के बीच निर्णयों को लेकर मतभेद था। क्या धारा 80 व्यप्रसं की असंशोधित उप–धारा (1) के उपबंध शाश्वत निषेधाज्ञा के मुकदमों पर लागू होते हैं। उस संघर्ष को भागचंद बनाम सेक्रेटरी ऑफ स्टेट[30] में प्रिवी कौंसिल द्वारा सुलझाया गया था, जिसमें सेक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम राजलकी[31], दक्षिण रंजन बनाम ओंकार चंद[32] में कलकत्ता उच्च न्यायालय के

[29] एआईआर 1984 एससी 1043 = (1984) 1 एससीसी 627
[30] एआईआर 1927 पीसी 176
[31] (1898) 25 कल. 239
[32] (1924) 50 कल 992 = एआईआर 1924 कल 145

निर्णयों को मंजूरी दी गई थी, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम कालेखां[33], कोटि रेड्डी बनाम सुब्बैया[34] में मद्रास उच्च न्यायालय और बच्चू बनाम सेक्रेटरी ऑफ स्टेट[35], अब्दुल रहीम बनाम अब्दुल रहमान[36] में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कहा था कि धारा 80 व्यप्रसं की उप–धारा (1) और पिछले संहिताओं की संबंधित धारा 424 का कड़ाई से अनुपालन किया जाना चाहिए और यह सभी प्रकार की कार्रवाई और सभी प्रकार की राहत पर लागू होती है। प्रिवी कौंसिल के उपरोक्त फैसले ने सेक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम गजानन[37], नागिनलाल बनाम ऑफिशियल असाइनी[38] एवं सेक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम गुलाम रसूल[39] के अनुसार, किसी सार्वजनिक अधिकारी या राज्य सचिव के विरुद्ध निषेधाज्ञा के लिए वाद लाने में कोई सूचना आवश्यक नहीं है, जब रोके जाने वाले कार्य से गंभीर या अपूरणीय क्षति हो सकती है। प्रिवी कौंसिल ने बोलते हुए कहा विस्काउंट समर ने इस प्रकार कहा:

> "अपीलकर्ताओं की तरह यह तर्क देना कि वादी को तत्काल उपचार मांगने का अधिकार है, जबकि धारा 80 मात्र एक प्रक्रिया है, भ्रामक है, क्योंकि धारा 80 न्यायालय पर एक वैधानिक और बिना शर्त दायित्व लागू करती है। इसी तरह, यह तर्क भी कि 'कलेक्टर द्वारा अपनी आधिकारिक क्षमता में किया गया कार्य, जिसके संबंध में वाद शुरू हुआ था, भुगतान के लिए उसकी धमकी थी, गलत है। यह भी गलत है, क्योंकि अवैधता, यदि कोई है, तो कर की वसूली के आदेश में है। यदि वह वैध था, तो रोक लगाने के लिए कुछ भी नहीं था। इसलिए सोचा कि रोक लगाने योग्य कार्य भविष्य में होने वाली आशंका है, केवल वह कार्य जिसके संबंध में ' वाद है, यदि है, तो वह आदेश पहले ही पूरा हो चुका है और जारी किया जा चुका है।'

(22) उपर्युक्त चर्चा यह दर्शाएगी कि निगम, उसके प्राधिकारियों और अधिकारियों को, जैसा भी मामला हो, वाद चलाने से पहले सूचना जारी करने की आवश्यकता एक प्रशंसनीय लोक नीति पर आधारित है, जिसे अनुच्छेद 14 के प्रावधानों की कसौटी पर मनमाना या तर्कहीन नहीं कहा जा सकता। इसी तरह, आक्षेपित उपबंध को केवल इस

---

[33] (1914) 37 मैड 113
[34] (1918) 41 मैड 792
[35] (1902) 25 सभी 187
[36] (1924) 46 सभी 884 = एआईआर 1924 सभी 851
[37] (1911) 35 अच्छा 362
[38] (1912) 37 बॉम. 243
[39] (1916) 40 अच्छा 392

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

आधार पर मनमाना या अनुचित नहीं कहा जा सकता कि कुछ अवसरों पर इससे वादी को कठिनाई या चोट पहुँच सकती है। हम इस तथ्य का न्यायिक संज्ञान ले सकते हैं कि किसी भी विधि के कार्यान्वयन से कुछ परिस्थितियों में किसी पक्ष को कठिनाई या असुविधा या नुकसान या हानि हो सकती है, लेकिन, वह परिस्थिति अपने आप में किसी विधि को असंवैधानिक करार देने का स्वीकार्य आधार नहीं है, क्योंकि विधि सामान्यता से संबंधित है न कि असामान्यता से, सामान्य चीजों और घटनाओं से न कि असाधारण चीजों और घटनाओं से। जैसा भी हो, हमें इस पहलू पर और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि, हमारा विचार है कि अत्यधिक तात्कालिकता में मुकदमेबाज के पास निगम और उसके अधिकारियों की किसी भी कार्रवाई के खिलाफ अपनी संपत्ति की रक्षा के लिए विधि द्वारा प्रदान किए गए वैकल्पिक उपाय हैं। ऐसा नहीं है कि मुकदमेबाज के पास अत्यधिक आवश्यकता में कोई विधिक उपाय नहीं है, क्योंकि वह निगम और उसके अधिकारियों को सूचना जारी किए बिना और एक महीने की अवधि का इंतजार किए बिना व्यवहार न्यायालय के समक्ष वाद दायर नहीं कर सकता और तत्काल अंतरिम आदेश प्राप्त नहीं कर सकता। यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि उप–धारा (1) के तहत सूचना देना अधिनियम की धारा 401 किसी पक्ष को विधि के अलावा अन्य कार्यवाही करने से नहीं रोकती है, यदि वे विधि के तहत अनुमेय हैं। दूसरे शब्दों में, उप–धारा (1) में निहित रोक एक रोक नहीं है जो विभिन्न न्यायालयों और न्यायिक मंचों के समक्ष अन्य सभी विधिक कार्यवाहियों को शुरू करने के लिए लागू है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत, प्रत्येक उच्च न्यायालय को अपने अधिकार क्षेत्र में, जिसके संबंध में वह अधिकारिता का प्रयोग करता है, किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण को, उपयुक्त मामलों में किसी भी सरकार को, उन क्षेत्रों के भीतर भारत के संविधान के भाग–III द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के प्रवर्तन के लिए और किसी अन्य उद्देश्य के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकारपृच्छा और उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट सहित निर्देश, आदेश या रिट जारी करने की शक्ति होगी। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि राज्य या उसके साधन या किसी अन्य निकाय की हर कार्रवाई जिसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में "राज्य" माना जा सकता है, जो अवैध है या निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन करती है, अनुचित, तर्कहीन या दुर्भावनापूर्ण है, न्यायिक समीक्षा के लिए खुली है। राज्य या अन्य वैधानिक या सार्वजनिक निकायों की हर कार्यकारी या प्रशासनिक कार्रवाई, जिसे विधिक रूप से "प्राधिकरण" माना जाता है, जो मौलिक अधिकारों या किसी अन्य अधिकार या किसी विधि का उल्लंघन करती है, न्यायिक समीक्षा के लिए खुली है। अपकृत्य के मामलों में भी

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

उपचार उपलब्ध हैं। ऐसी कार्रवाई न्यायिक समीक्षा के अधीन है, भले ही वह संविदात्मक क्षेत्र से संबंधित हो। अनुच्छेद 226 भाग–III द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के प्रवर्तन के साथ–साथ किसी अन्य उद्देश्य के लिए रिट, निर्देश या आदेश जारी करने की शक्ति प्रदान करता है। अनुच्छेद 226 सभी उच्च न्यायालयों को रिट और आदेश जारी करने के मामले में बहुत व्यापक शक्तियाँ प्रदान करता है। अधिनियम की धारा 401 की उपधारा (1) के अनुसार निगम और उसके प्राधिकारियों के विरुद्ध वाद चलाने में विधानमंडल द्वारा लगाई गई सीमाएं, इस अधिनियम के तहत आवेदन प्रस्तुत करते समय लागू नहीं होती हैं। विधिक उपचार के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 के तहत अपील की जा सकती है। इसके अलावा, भारत के संविधान के भाग–III द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के प्रवर्तन के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, अधिकार–पृच्छा और उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट सहित किसी भी निर्देश या आदेश या रिट के लिए सर्वोच्च न्यायालय में जाने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत प्रत्याभूत एक मौलिक अधिकार है। इसलिए, ऐसे मामले में जहां निगम या उसके अधिकारियों या अधिकारियों की कार्रवाई से वादी के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है, वादी के लिए अपने मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में जाने का अधिकार है। इस प्रकार, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि मूल अधिकारों या किसी अन्य संवैधानिक अधिकार या किसी अन्य अधिकार के उल्लंघन की शिकायत करने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 के तहत आवेदन या संविधान के भाग–III में प्रत्याभूत मूल अधिकारों के उल्लंघन की शिकायत करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत आवेदन, इस आधार पर वर्जित नहीं है कि उसके पास अधिनियम की धारा 401 के तहत वाद के माध्यम से वैकल्पिक उपाय है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जहां उच्च न्यायालय की राय है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विधि के तहत प्रदान किया गया उपाय अपर्याप्त और प्रभावी नहीं है, वह संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत हस्तक्षेप कर सकता है और इस तथ्य के बावजूद आवेदन पर विचार कर सकता है कि व्यक्ति ने वैकल्पिक वैधानिक उपायों को समाप्त किए बिना उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। इस संबंध में हम शिव दत्त और अन्य बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य[40] और अन्य के मामले में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय का भी अवलंब लेते हैं। उस मामले में यह माना गया कि अनुच्छेद 226 के तहत याचिकाकर्ता के कुछ संपत्तियों पर अधिकार के उल्लंघन की शिकायत करने वाला आवेदन संविधान के अनुच्छेद 19 का

[40] एआईआर 1953 हिम–पी 95

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

उल्लंघन करता है, इस आधार पर वर्जित नहीं है कि उसने उप–धारा (1) के तहत आवश्यक रूप से वाद की सूचना दी थी । व्यप्रसं की धारा 80 की धारा (1) के तहत, यह भी ध्यान देने की जरूरत है कि निगम के भीतर सुधारात्मक मशीनरी की अनुपस्थिति या तत्काल स्थितियों में अंतरिम आदेश देने के लिए व्यवहार न्यायालय में शक्ति का अभाव, निगम या उसके अधिकारियों के खिलाफ विधिक उपायों के लिए कार्रवाई करने के लिए वादी के लिए कार्रवाई का कारण उत्पन्न होने के तुरंत बाद निगम और उसके अधिकारियों को अधिनियम की धारा 401 की उप–धारा (1) के तहत आवश्यक सूचना की तामील किए बिना, यह अपने आप में आक्षेपित उपबंध को अनुचित या मनमाना नहीं बनाता है और आक्षेपित उपबंध को अवैध भी नहीं बनाता है। अधिनियम की धारा 401 (1) के तहत आवश्यक सूचना जारी करने और सूचना की अवधि समाप्त होने से पहले तत्काल अंतरिम आदेश देने के लिए व्यवहार न्यायालय में क्षेत्राधिकार की कमी बहुत अधिक महत्व नहीं रखती है, खासकर तब जब किसी पीड़ित पक्ष के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का आह्वान करना खुला होता है। इस स्थिति से याचिकाकर्ताओं की आशंका दूर हो जाएगी, जैसा कि उनके अधिवक्ता श्री बी.पी. शर्मा ने काफी मुखर ढंग से कहा है।

WebCopy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(23) इसके अलावा, यह ध्यान देने योग्य है कि मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने राम कृष्ण पाराशर बनाम चिरौंजी लाल वैश्य और अन्य (पूर्वोक्त) के मामले में राय दी है कि जहां व्य.प्र.सं. की धारा 80 के तहत सूचना की अवधि समाप्त नहीं हुई है, तो इच्छुक वादी व्य.प्र.सं. की धारा 151 के तहत एक सारभूत आवेदन दायर कर सकता है जिसमें न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का आह्वान करते हुए एक अस्थायी निषेधाज्ञा प्रदान करने की प्रार्थना की जा सकती है और ऐसे आवेदन पर कार्रवाई करते हुए व्यवहार न्यायालय व्य.प्र.सं. की धारा 151 द्वारा संरक्षित की गई अंतर्निहित शक्तियों को ध्यान में रखते हुए एक अस्थायी निषेधाज्ञा प्रदान कर सकता है और ऐसा आदेश केवल तब तक प्रभावी रहेगा जब तक संबंधित पक्ष वाद दायर करने में सक्षम नहीं हो जाता है और वाद में न्यायालय से अस्थायी निषेधाज्ञा प्राप्त करने में सक्षम नहीं हो जाता है। दूसरे शब्दों में, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के अनुसार, इच्छुक वादी के पास सूचना जारी करके और अस्थायी निषेधाज्ञा की मांग करते हुए आवेदन दायर करके तथा न्यायालय से धारा 151 के तहत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करने के लिए प्रार्थना करके दावा पेश करने का उपाय है, जिसमें सूचना की वैधानिक अवधि समाप्त होने पर वाद के रूप में पंजीकृत होने के लिए इच्छित वाद की एक प्रति संलग्न की गई है और उस

स्थिति में व्यवहार न्यायालय ऐसे आवेदन पर कार्रवाई करते हुए, उचित मामलों में, व्यप्रसं की धारा 151 द्वारा संरक्षित गई अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए अस्थायी निषेधाज्ञा दे सकता है। सुनवाई के दौरान, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं ने हमें बताया कि राम कृष्ण पाराशर बनाम चिरौंजी लाल वैश्य और अन्य (पूर्वोक्त) के मामले में निर्णय सुनिश्चित हो गया है और यह क्षेत्र में बना हुआ है ।

(24) उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री बी.पी. शर्मा का पहला तर्क, जो इस धारणा पर आधारित है कि निगम और उसके अधिकारियों के खिलाफ वाद चलाने के मामले में अधिनियम की धारा 401 की उपधारा (1) में निहित प्रतिबंध के मद्देनजर, पीड़ित व्यक्तियों के पास कोई विधिक उपाय नहीं बचा है, हमें स्वीकार्य नहीं है, इसका साधारण कारण यह है कि पीड़ित पक्ष अत्यधिक तात्कालिकता और अनिवार्यता में उचित आदेश मांग सकते हैं। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय में अपील करना या व्य.प्र.सं. की धारा 151 के तहत एक मूल आवेदन दायर करके स्वयं व्यवहार न्यायालय का दरवाजा खटखटाना। राम कृष्ण पाराशर बनाम चिरौंजी लाल वैश्य और अन्य (सुप्रा) के मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की युगलपीठ द्वारा निर्धारित व्यवहार न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का उपयोग करना या जहां मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है, संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाना।

WebCopy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(25) यह हमें श्री शर्मा के अगले तर्क की ओर ले जाता है कि चूंकि अधिनियम की धारा 401 की उपधारा (1) में विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877 की धारा 54 के अंतर्गत वाद पेश करने के लिए विशेष उपबंध नहीं है, जो ऐसे वाद पेश करने को प्रतिबन्ध से छूट देता है, जैसा कि मध्य प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1961 की धारा 319 की उपधारा (1) में किया गया है और चूंकि व्यवहार न्यायालय को धारा 80 व्य.प्र.सं. की उपधारा (2) के अनुसार, जैसा कि उपधारा (2) में उपबंध है, बिना कोई सूचना तामील किए अत्यावश्यक अनुतोष तत्काल प्रदान करने की कोई शक्ति प्रदान नहीं की गई है, इसलिए आक्षेपित उपबंध स्पष्टतः भेदभावपूर्ण होने के कारण असंवैधानिक होने के कारण निंदा योग्य है।

(26) बॉम्बे राज्य बनाम बलसारा एफ.एन.[41] में, सर्वोच्च न्यायालय अभिनिर्धारित किया केवल असमानता प्रस्तुत किया जाना किसी विधि को अमान्य करने के लिए पर्याप्त

[41] एआईआर 1951 एस.सी. 318

नहीं है। अम्मरूनिस्सा बेगम बनाम महबूद बेगम[42], बाबूलाल अमथलाल मेहता बनाम सीमा शुल्क कलेक्टर, कलकत्ता[43], गोपी चंद बनाम दिल्ली प्रशासन[44] में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि विभेदकारी व्यवहार समान संरक्षण से केवल तभी इनकार किया जाता है जब भेदभाव के लिए कोई उचित आधार न हो। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि कोई विधि व्यक्तियों या चीजों के 'अच्छी तरह से परिभाषित वर्ग' के सदस्यों के साथ समान रूप से व्यवहार करता है, तो यह अपवर्जित नहीं है और इस आधार पर समान संरक्षण से इनकार करने के आरोप के लिए खुला नहीं है कि यह अन्य व्यक्तियों पर लागू नहीं होता है। यह निर्धारित करना विधानमंडल का काम है कि वह विधि के दायरे में किन श्रेणियों को शामिल करेगा और केवल इसलिए कि कुछ श्रेणियां जो विधि द्वारा सम्मिलित की गई हैं, उसी स्तर पर आती हैं, उन्हें छोड़ दिया जाता है, जो विधि को किसी भी तरह से भेदभावपूर्ण और अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाला नहीं बनाता है। अनुच्छेद 14 जिस चीज को प्रतिषेध करता है वह वर्ग विधान है और विधि के उद्देश्य के लिए युक्तियुक्त वर्गीकरण नहीं है जिसे विधानमंडल विधायी उद्देश्य के लिए व्यक्तियों को युक्तियुक्त वर्गीकरण करने का ध्यान रखता है और यदि यह 'अच्छी तरह से परिभाषित वर्ग' से संबंधित सभी व्यक्तियों के साथ स्पष्ट रूप से व्यवहार करता है, तो इस आधार पर समान संरक्षण से इनकार करने के आरोप के लिए खुला नहीं है कि विधि अन्य व्यक्तियों या चीजों पर लागू नहीं होता है। जरूरी यह है कि वर्गीकरण के आधार और विचाराधीन अधिनियम के उद्देश्य के बीच एक संबंध होना चाहिए। अनुच्छेद 14 इस बात पर बल नहीं देता कि विधायी वर्गीकरण वैज्ञानिक रूप से परिपूर्ण या न्यायशास्त्रवत रूप से पूर्ण होना चाहिए। न्यायालय तब तक हस्तक्षेप नहीं करेगा जब तक कि वर्गीकरण के परिणामस्वरूप स्पष्ट असमानता न हो।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(27) जब किसी विधि को समान संरक्षण से वंचित करने के रूप में चुनौती दी जाती है, तो न्यायालय द्वारा निर्धारण के लिए प्रश्न यह नहीं है कि क्या इससे असमानता उत्पन्न हुई है, बल्कि यह है कि क्या कोई अंतर है, जो विधि के उद्देश्य से न्यायोचित और युक्तियुक्त संबंध रखता है। केवल भेदभाव या उपचार की असमानता या भार की असमानता समान संरक्षण कंडिका के निषेध के भीतर भेदभाव नहीं है। यह दर्शाना आवश्यक है कि चयन या विभेदन अनुचित या मनमाना है; तथा यह विधानमंडल के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किसी तर्कसंगत आधार पर आधारित नहीं है।

---

[42] एआईआर 1957 एस.सी. 877
[43] एआईआर 1953 एस.सी. 91
[44] एआईआर 1957 एस.सी. 609

(28) यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि जो व्यक्ति नगरपालिका के प्रादेशिक अधिकार क्षेत्र में रहते हैं और जो व्यक्ति निगम के स्थानीय आधिकारिता में रहते हैं, उन्हें भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रयोजनों के लिए एक ही वर्ग या श्रेणी के व्यक्ति नहीं माना जा सकता है। निस्संदेह, निगम नगरपालिका की तुलना में एक बड़ा और जटिल और अधिक शहरी इकाई है। मध्य प्रदेश नगरपालिका अधिनियम, 1961 की धारा 319 की उपधारा (3) के समान उपबंध को अधिनियम की धारा 401 के मुख्य भाग में अधिनियमित न करने में विधानमंडल की बुद्धिमत्ता पर इस न्यायालय द्वारा सवाल नहीं उठाया जा सकता है। इसी तरह, व्य.प्र.सं. की धारा 80 और अधिनियम की धारा 401 के तहत परिकल्पित विधिक प्रक्रिया में एक स्पष्ट अंतर है। व्य.प्र.सं. के तहत, कोई भी व्यक्ति व्यवहार प्रकृति का वाद संस्थित कर सकता है, सिवाय उन मुकदमों के जिनका संज्ञान किसी अन्य व्यक्ति, प्राकृतिक या न्यायिक के खिलाफ स्पष्ट रूप से या निहित रूप से वर्जित है, जबकि अधिनियम की धारा 401 में केवल निगम और उसके अधिकारियों के खिलाफ वाद दायर करने की परिकल्पना की गई है। आधुनिक समय में, निगमों की स्थापना न केवल सार्वजनिक उपयोगिता सेवा प्रदान करने के लिए की जाती है, बल्कि पारंपरिक रूप से संप्रभु राज्य से संबंधित और उसके द्वारा किए जाने वाले कई कार्यों को करने के लिए भी की जाती है। यहां फिर से, व्य.प्र.सं. की धारा 80 की उप–धारा (1) में अधिनियमित प्रकृति के प्रावधानों को अधिनियमित न करने में विधानमंडल की बुद्धिमत्ता, अधिनियम की धारा 401 में प्रतिवादी अधिकारियों पर सूचना की सेवा जारी करने पर बल दिए बिना व्यवहार न्यायालय को तत्काल अंतरिम आदेश देने का अधिकार देती है, न्यायालय द्वारा प्रश्नगत नहीं किया जा सकता। इसलिए, श्री बी.पी. शर्मा का तर्क कि यह अधिनियम भेदभावपूर्ण विधि है, हमें स्वीकार्य नहीं है और इसे अस्वीकार किया जाता है।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(29) अंत में, श्री बी.पी. शर्मा का तर्क कि अधिनियम की धारा 401 की उपधारा (1) में निहित प्रतिबंध के मद्देनजर, संविधान के अनुच्छेद 300–ए के तहत नागरिक को अपनी संपत्ति की रक्षा करने की गारंटी के अधिकार का उल्लंघन होता है, पर ध्यान देने की आवश्यकता है, जिसे हमने ऊपर जो कहा है, उसके तहत खारिज कर दिया जाना चाहिए। अनुच्छेद 300–ए यह गारंटी देता है कि किसी भी व्यक्ति को विधि के अधिकार के अलावा उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा। 'वंचन' को स्वामित्व के अधिकारों के 'प्रतिबंध' से अलग किया जाना चाहिए। केवल इसलिए कि अधिनियम की धारा 401 की उपधारा (1) किसी व्यक्ति पर प्रतिबंध लगाती है कि वह निगम और उसके अधिकारियों को सूचना जारी किए बिना वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है, यह नहीं कहा जा सकता है कि

वह प्रतिबंध व्यक्ति की संपत्ति से वंचित करता है। इसके अलावा, यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि किसी व्यक्ति को अनुच्छेद 300–ए के अनुसार विधि के अधिकार से उसकी संपत्ति से वंचित किया जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति को अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत, उसमें वर्णित वैध कारणों या आधारों पर उसकी संपत्ति से वंचित किया जा सकता है, तो ऐसे व्यक्ति को यह कहते हुए नहीं सुना जाना चाहिए कि उसे विधिक प्राधिकार के बिना उसकी संपत्ति से वंचित किया गया है।

(30) परिणामस्वरूप और पूर्वोक्त कारणों से, हम रिट याचिकाओं को खारिज करते हैं और अधिनियम की धारा 401 के आक्षेपित उपबंध की संवैधानिक वैधता को कायम रखते हैं, हालांकि, व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जा रहा है ।

(31) हम आदेश–पत्रों से देखते हैं कि इस न्यायालय ने अंतरिम आदेश पारित करके विषयगत संपत्तियों के संबंध में यथास्थिति बनाए रखी है, जिससे इन सभी महीनों में विषयगत संपत्तियों के विध्वंस को रोका जा सका है। मामले के इस दृष्टिकोण से, हम निर्देश देते हैं कि अंतरिम आदेश पारित किए जाएं। इस न्यायालय द्वारा इन रिट याचिकाओं में किए गए निर्णय आज से छह सप्ताह की अवधि के लिए प्रभावी रहेंगे। हालांकि, हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि यदि ऐसा करने का कोई विधिक औचित्य है तो, छह सप्ताह की अवधि समाप्त होने के बाद, निगम और उसके प्राधिकारी संबंधित संपत्तियों को ध्वस्त करने के लिए उचित विधिक कदम उठा सकते हैं।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सही/–
मुख्य न्यायाधीश

सही/–
सतीश के. अग्निहोत्री
न्यायाधीश

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Translated By Shriya Jaiswal, **Advocate**